भावार्थ - परमार्थनय तो जीव को शरीर तथा राग-द्वेष-मोह से भिन्न कहता है। परमार्थनय तो जीव को - ऐसा लेना। निश्चयनय यथार्थदृष्टि (तो) जीव को शरीर तथा राग-द्वेष-मोह से भिन्न कहता है। **यदि इसी का एकान्त ग्रहण किया जाये..** शरीर और जीव को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, वह न माने तो एकान्त हो जाता है। व्यवहारनय का विषय शरीर और जीव को एक माने, वह व्यवहारनय का विषय है, जाननेयोग्य है। **शरीर तथा राग-द्वेष-मोह पुद्गलमय सिद्ध होंगे..** तब तो शरीर और राग-द्वेष-मोह पुद्गल / जड़ सिद्ध होंगे। आहाहा! यह क्या कहा? शरीर में आत्मा है और आत्मा तथा शरीर अत्यन्त भिन्न है—ऐसा कहो तो वह तो निश्चय से वह सत्य है। सम्यग्दर्शन का विषय, धर्म की पहली शुरुआत का विषय तो भगवान आत्मा, शरीर से भिन्न, राग-द्वेष-मोह, दया-दान आदि विकल्प से भी भिन्न और जिसका विषय तो पर्याय भी नहीं। सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी, उसका विषय तो सम्यग्दर्शन की पर्याय भी उसका विषय नहीं है। सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय तो अखण्ड ज्ञायकभाव पूर्णानन्द प्रभु द्रव्यस्वभाव जो पूर्ण है, वह सम्यक् का विषय है, वह निश्चयनय का विषय है। अब यदि उसे एकान्त ही

किया जावे कि उसे शरीर और जीव को व्यवहार से भी सम्बन्ध नहीं है, तब तो उसका ज्ञान व्यवहार से झूठा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है थोड़ी। शरीर और आत्मा एक ही है – ऐसा माने, तब तो शरीर को मारने से जीव मरे, उसमें कुछ पाप नहीं लगता। परन्तु ऐसा है नहीं। शरीर और जीव व्यवहार से एक है, इस कारण शरीर को मसल देने से जीव साथ में आता है; इसलिए उसे पाप का परिणाम होता है। आहाहा! और उसे एकान्त ही माने कि शरीर से प्रभु अत्यन्त भिन्न है, यह निश्चय से सत्य है परन्तु व्यवहार से शरीर को और जीव को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध भी न हो तो शरीर को मसल देने से पुद्गल को मारने से जैसे पाप नहीं, वैसे शरीर को मसल देने से भी जीव का मरण हो तो उसका पाप नहीं – ऐसा होगा। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग समझना बहुत कठिन है, भाई! आहाहा!

शरीर तथा राग-द्वेष-मोह पुद्गलमय सिद्ध होंगे.. क्यों (कि) कहा है तो ऐसा ही। परमार्थ से तो शरीर को जड़ कहा और अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध, शुभाशुभभाव होते हैं, उन्हें भी चैतन्य की दृष्टि से अजीव और जड़ कहा है। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन का आश्रय द्रव्य है; उस द्रव्य में तो पुण्य-पाप के भाव भी नहीं है। शरीर तो नहीं, परन्तु दया, दान, काम, क्रोध के विकल्प भी उसमें नहीं है। उसमें ये तो नहीं, परन्तु एक समय की जो सम्यग्दर्शन की पर्याय है, वह वस्तु में नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन काम है, प्रभु! आहाहा!

जैनदर्शन समझना, वह कोई अलौकिक बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा, शरीर से तो भिन्न (है), शरीर को पुद्गल / जड़ कहा और शुभ-अशुभराग—जो दया और वांचन और श्रवण-मनन का होता है, आहाहा! उस राग को भी परमार्थदृष्टि से तो पुद्गल कहा है। क्योंकि इस जीव का कोई स्वभाव—अनन्त गुण हैं; भगवान आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण हैं, भगवान आत्मा में..। कितने अनन्त? जिस अनन्त का अन्त नहीं कि यह अनन्त और अब यह अन्तिम अनन्त और इसका अन्तिम गुण। आहाहा! इतने अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. को अनन्त से गुणा करो तो भी अनन्त बाकी रहते हैं, इतने अनन्त गुण आत्मा में है; परन्तु उनमें का कोई गुण विकृत या विकार करे—ऐसा गुण नहीं है। आहाहा!

इसलिए जो विकार होता है, वह पुद्गलकर्म जो भावक है, उसके लक्ष्य से हुआ विकारी भाव; उसे भी यहाँ तो पुद्गल कहा है, आहाहा! क्योंकि वह जो राग का विकल्प है—यह श्रवण, वांचना, कहना—ऐसा जो विकल्प उत्पन्न होता है, वह अचेतन है-जड़ है.. आहाहा! क्योंकि उसमें चैतन्यस्वभाव का अंश नहीं है। वह राग स्वयं अपने को नहीं जानता तथा राग, स्वयं भगवान साथ में है, उसे नहीं जानता; वह राग, चैतन्य द्वारा ज्ञात होता है; इसलिए उस राग को पुद्गल-अचेतन और जड़ कहा है; आहाहा! आहाहा! परन्तु यदि उसे एकान्त ही मान ले कि राग-द्वेष-मोह, वे पुद्गल के हैं और जीव की पर्याय में व्यवहार से नहीं, तो एकान्त होता है, एकान्त मिथ्यात्व होता है। आहाहा!

भगवान जीवस्वभाव, जो शुद्ध चैतन्यघन (है), उसमें भी राग को मानना, तो भी मिथ्यात्व होता है।

श्रोता : तीनों में ही मानना, मिथ्यात्व?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में मानना वह। स्वभाव में कहा न? स्वभाव में। परन्तु पर्याय में राग नहीं - ऐसा मानना, वह भी एकान्त है। पण्डितजी! कठिन बाते हैं। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, चैतन्यस्वभाव से भरपूर, यह चैतन्यरत्नाकर है। चैतन्यरत्नाकर है। यह प्रभु तो चैतन्य के रत्नों का समुद्र है। उसमें राग मानना, वह मिथ्यात्व है, आहाहा! परन्तु उसकी पर्याय में भी राग न मानना, आहाहा! वह भी मिथ्यात्व-एकान्त है। ऐसी बात है, प्रभु! प्रभु का मार्ग सूक्ष्म, भाई!

यह जीव का—प्रभु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि परमार्थ से तो प्रभु को, शरीर, राग और द्वेष को पुद्गल कहकर, उससे प्रभु को भिन्न कहा है। सम्यग्दर्शन का विषय! आहाहा! परन्तु इतने से कोई ऐसा ही मान ले कि उसके द्रव्यस्वभाव में-वस्तु की दृष्टि का विषय है, उसमें राग-द्वेष और शरीर नहीं, परन्तु उसकी पर्याय में भी राग-द्वेष नहीं, तब तो बन्ध का ही अभाव होगा; और बन्ध का अभाव होने पर, उसे छोड़ने का मोक्ष का उपाय यह भी व्यवहार है। आहाहा! यह क्या कहा? यदि राग-द्वेष-मोह इसकी पर्याय में भावबन्धरूप से न हो, तो बन्ध का अभाव होता है और उसे छोड़ने का (अर्थात्) बन्ध है, उसे छोड़ने का उपाय, वह भी मोक्ष का उपाय है, वह भी पर्याय है; वह

व्यवहार है। मोक्ष का उपाय किसके आश्रय से होता है-यह अलग वस्तु (बात) है। यह तो त्रिकाली भगवान परमानन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन के अवलम्बन से मोक्ष का मार्ग होता है; किन्तु यहाँ जो कहना है, वह (यह है) कि मोक्ष का मार्ग जो है, वह तो पर्याय है। यदि बन्ध ही नहीं मानो, पर्याय में बन्ध नहीं मानो... वस्तु में बन्ध और मुक्ति दोनों नहीं है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय-जो भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनुभव में आवे, ऐसे द्रव्य में तो बन्ध और मोक्ष की पर्याय भी उसमें नहीं है, आहाहा! क्योंकि बन्ध और मोक्ष तो पर्याय है और भगवान तो बन्ध और मोक्ष की पर्याय से रहित त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप आत्मा है। आहाहा!

जिसने उसका विषय करके सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसे भी राग-द्वेष के—बन्ध के परिणाम, पर्याय में हैं—ऐसा उसे जानना चाहिए। आदरना या नहीं - यह प्रश्न यहाँ नहीं है; और उन राग-द्वेष के परिणाम और बन्धरूप से अटकती दशा को न माने तो उन्हें छोड़ने का जो उपाय-मोक्ष का मार्ग है, वह भी सिद्ध नहीं होता। अरे.. अरे..! ऐसा अटपटा है!

श्रोता : बहुत अच्छा है!

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिकार ही ऐसा है, बापू! क्या हो? अरे रे! लोग साधारण जानकारी करके मान बैठते हैं कि हम समझ गये। बापू! यह मार्ग कोई अलग है, भाई! अनन्त-अनन्त काल में जिसने वास्तविक-एक सैकेण्ड भी वास्तविक तत्त्व-द्रव्य और पर्याय-दो वास्तविक क्या है—इसका ज्ञान इसने यथार्थ किया ही नहीं। आहाहा!

एकान्त ऐसा माने कि राग और द्वेष जीव में है, वह भी मिथ्यादृष्टि है तथा एकान्त ऐसा माने कि जीव में-वस्तु में नहीं, इसलिए पर्याय में भी नहीं, ऐसा (यह) भी एकान्त मिथ्यात्व है। आहाहा! हसुभाई! यह सूक्ष्म है। वहाँ तुम्हारे करोड़ रुपयों में-धूल में कुछ हाथ आवे, ऐसा नहीं है। ऐ ई! सब करोड़पति कल आये थे न! रतनलालजी कलकत्ता के, पाँच-छह करोड़! आज सबेरे गये। उनके पास पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। कोई तो कहता था एक-एक लड़के के पास एक-एक करोड़ रुपये हैं। छह लड़के हैं न पोपटभाई के, उन्हें एक-एक के पास एक-एक करोड़, और इनके पिता के अलग, कोई कहता था। यहाँ कहाँ हम गिनने जाते हैं! परन्तु वह धूल कहाँ आत्मा की थी, बापू! आहाहा! जिसमें

राग-द्वेष हो, वह भी जीव का नहीं; आहाहा! और (माने कि) पैसा, स्त्री और पुत्र मेरा, मूढ़ है। उसकी दृष्टि मूर्खतापूर्ण है। चिमनभाई! बड़े कारखाने और सब बड़े, आहाहा! यह तो नहीं; राग दया का, दान का; अरे! गुण-गुणी भेद का जो विकल्प होता है; गुणी ऐसा जो भगवान, उसमें जो अनन्त गुण—ऐसा भेद का विकल्प उठे... आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! वह विकल्प भी स्वरूप में नहीं है। इस परमार्थदृष्टि से, परमार्थदृष्टि स्वीकार करने को ऐसा कहा, परन्तु उस दृष्टि में एकान्त मान ले कि मेरी पर्याय में भी राग नहीं तो अटका हुआ—भावबन्ध तो है और भावबन्ध न होवे तो उसे छोड़ने का मोक्ष का उपाय भी निरर्थक जाता है।

वास्तव में तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—यह जो मोक्ष का मार्ग है, वह त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है, परन्तु प्रगट हुई पर्याय है, वह व्यवहार है। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आहाहा! यदि तुम राग को, पर्याय में (है) ही नहीं—ऐसा मानो, तो फिर राग छेदने का मोक्ष का उपाय भी नहीं। बन्ध और मोक्ष की पर्याय / दशा है ही नहीं—ऐसा पर्याय में होगा। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म! अब निवृत्ति कहाँ इसमें लोगों को; पूरे दिन स्त्री-पुत्र पाप, अकेला पाप का धन्धा; धर्म तो नहीं, परन्तु वहाँ तो पुण्य भी नहीं। आहाहा! कहो, हसुभाई! बड़े पैसेवालों को अधिक उपाधि का पार नहीं होता। आहाहा!

अब इसे कहना कि प्रभु! सुन भाई! यह शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार तो परद्रव्य हैं, ये तो तुझमें नहीं, तेरे नहीं; और उनमें तू नहीं, परन्तु अन्दर राग-द्वेष होते हैं, वे तुझमें नहीं, तू उनमें नहीं—द्रव्य/वस्तुदृष्टि से। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इतना मानकर भी यदि फिर पर्याय में राग नहीं और शरीर को तथा जीव को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध भी नहीं, तो जीव को और शरीर को निमित्त सम्बन्ध व्यवहार है, आहाहा! — इतना यदि न माने तो शरीर को मसलने से, जैसे भस्म को मसलने से पाप नहीं; वैसे शरीर और आत्मा अन्दर इकट्ठे हैं, वे दोनों एक माने, भिन्न अन्दर न माने, पर्याय में भिन्न है परन्तु शरीर और (पर्याय) व्यवहार दोनों (के बीच) निमित्त सम्बन्ध है, इतना न माने तो उसे मारने से—निःशंकरूप से मारने से इसे पाप नहीं लगे। आहाहा! क्या कहते हैं? यह कठिन है, भाई!

श्रोता : कठिन तो था, परन्तु अब आपने कठिन नहीं रहने दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु तो ऐसी है, बापू! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **तो फिर पुद्गल का घात करने से हिंसा नहीं होगी..** क्योंकि शरीर पुद्गल; राग-द्वेष के परिणाम, वे पुद्गल; वैसे तो निश्चय से तो ऐसा है, परन्तु पर्याय में इसके नहीं और व्यवहारनय का विषय ही नहीं..। निश्चयनय का विषय जो परमात्मस्वरूप भगवान, वह पूर्णानन्द का नाथ, जो सम्यग्दर्शन का विषय, और जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है—इतना ही माने और पर्याय में रागादि न माने तथा शरीर को और जीव को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध न माने, **तो फिर पुद्गल का घात करने से हिंसा नहीं होंगी तथा राग-द्वेष-मोह से बन्ध नहीं होगा। इस प्रकार, परमार्थ से जो बन्ध-मोक्ष दोनों का अभाव कहा है..** क्या कहा यह ?

वास्तव में जो परमार्थ से राग-द्वेष से भिन्न कहा है और मोक्ष की पर्याय से भी अन्दर भगवान भिन्न है; सिद्ध की पर्याय है और केवल (ज्ञान) की पर्याय है, वह तो वर्तमान में है, परन्तु उस पर्याय का द्रव्य में अभाव है, आहाहा! यह जो परमार्थ से कहा है तो यह सिद्ध हो, पश्चात् वह व्यवहार तो रहेगा ही नहीं इसे। जो राग-द्वेष-मोह है पर्याय में—ऐसा न मानो और शरीर तथा जीव को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है—ऐसा न मानो तो **परमार्थ से जो बन्ध-मोक्ष दोनों का अभाव कहा है, वह ही ठहरेगा..** व्यवहार से बन्ध और मोक्ष पर्याय में है—यह सिद्ध नहीं होगा। ऐसा मार्ग है। समझ में आया कुछ ? 'कुछ' अर्थात् किस पद्धति से कहा जाता है, ऐसा। समझ जाए, तब तो ठीक, परन्तु किस पद्धति से कहा जाता है.. आहाहा! ऐई! हसमुखभाई! यह अलग पद्धति है, प्रभु! आहाहा! भगवान का मार्ग स्याद्वाद है। अपेक्षित कथन है। त्रिकाल में (स्वभाव में) राग नहीं। दया, दान का विकल्प भी नहीं; शरीर तो नहीं। वर्तमान प्रगट पर्याय है—व्यक्त है, वह भी त्रिकाल में तो नहीं; वह तो भिन्न द्रव्य पूरा अखण्डानन्द प्रभु है और वही सम्यग्दर्शन का विषय है। परन्तु उसका एकान्त करने जाए; शरीर को और जीव को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, उसे न माने, तब तो जैसे शरीर को मारने से-पुद्गल को मारने से कहीं आत्मा को पाप नहीं लगता.. आहाहा! और राग-द्वेष-मोह है, वह बन्ध, पर्याय में सिद्ध नहीं होगा, तो उसे मोक्षमार्ग की

पर्याय भी सिद्ध नहीं होगी उसे (बन्ध को) छेदनेवाली। आहाहा! ऐसा है! इसमें कोई विद्वता की आवश्यकता नहीं है। इसमें वास्तविक तत्त्व क्या है, दृष्टि का विषय क्या है और व्यवहारनय का विषय क्या है-दोनों को यहाँ भलीभाँति जानना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? गाथा ऐसी ही आ गयी, कल भी ऐसी आयी थी। आहाहा!

इस प्रकार परमार्थ से जो बन्ध-मोक्ष दोनों का अभाव कहा है.. क्या कहा यह? निश्चय से-परमार्थ से तो बन्ध और मोक्ष का जीव में अभाव ही है। द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से तो भावबन्ध और भावमोक्ष—इनसे तो रहित ही भगवान है। आहाहा! परमार्थ से संसार-मोक्ष दोनों का अभाव कहा है, **एकान्त से यही ठहरेगा..** एकान्त से सिद्ध होगा। फिर पर्याय में राग-द्वेष है और शरीर का निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, यह बात इसे नहीं रहेगी। आहाहा!

यह तीनों बैठे बड़े हमारे अभी, धर्म की प्रभावना में बड़े हथियार हैं ये। यह हुकमचन्दजी, १५-१५ हजार लड़कों की परीक्षायें लेते हैं। ४३-४३ वर्ष की उम्र लिखी है उसमें। ४३ है? ऐसा! उसमें ४३ लिखा है, मैं ४१ समझता था, ४३ वर्ष है, क्षयोपशम बहुत अधिक है।

श्रोता : सब ऐसा कहते हैं आपका प्रभाव और प्रताप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ठीक है।

श्रोता : यह तो निमित्त का कथन है, उपादान इनका।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! क्या कहा यह? कि **परमार्थ से..** निश्चय से तो जीव को भावबन्ध और भावमोक्ष है नहीं। भावमोक्ष भी पर्याय है, भावबन्ध भी विकारी पर्याय है, तो वस्तु की दृष्टि से देखने पर वस्तु में तो वह भावबन्ध और भावमोक्ष दोनों नहीं है, यह कहा।

परमार्थ से जो संसार-मोक्ष दोनों का अभाव कहा है, एकान्त से यह ही ठहरेगा,.. राग का बन्ध है और उसे छूटने का (उपाय) मोक्ष का मार्ग पर्याय में है, वह सिद्ध नहीं होगा। आहाहा! **किन्तु, ऐसा एकान्तरूप वस्तु का स्वरूप नहीं है;..** आहाहा! व्यवहारनय का विषय है परन्तु इससे व्यवहारनय साधन है और निश्चय साध्य है - ऐसा

नहीं। यह फिर क्या कहा ? व्यवहारनय का विषय है—भावबन्ध और मोक्ष की पर्याय भाव दोनों पर्यायें हैं न ? व्यवहार का विषय है परन्तु व्यवहार साधन है और निश्चय साध्य है – ऐसा नहीं। आहाहा ! उसमें तो नहीं न पुस्तक ? उसमें तो ऐसा लिखा है... यह नया आया है न समयसार, साधक को तो व्यवहार ही होता है, सिद्ध को निश्चय होता है। ऐसी (उनकी) बात एकदम मिथ्या है।

श्रोता : सिद्ध को कहीं व्यवहार होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे ! यह तो सिद्धपर्याय है, वह सम्यग्ज्ञान / श्रुतज्ञान की अपेक्षा से तो सिद्ध और संसार दोनों व्यवहारनय का विषय है। उन्हें (सिद्ध को) नहीं, परन्तु जो साधक जीव है, जिसे श्रुतज्ञान प्रगट हुआ है, द्रव्य त्रिकाली ज्ञायक के आश्रय से-ज्ञायकस्वभाव भगवान जो पूर्णानन्द का नाथ है, उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन हुआ है, उसके साथ जो भावश्रुतज्ञान हुआ है, उस भावश्रुतज्ञान के दो भेद / अवयव हैं। भावश्रुतज्ञान है, वह प्रमाण है। अब नय है, वह प्रमाण का अंश / अवयव है। अब उस प्रमाण के अंश दो—निश्चय और व्यवहार, तो उस श्रुतज्ञान में निश्चय जो है, वह तो त्रिकाली को स्वीकारता है परन्तु श्रुतज्ञान में व्यवहारनय जो है, वह बन्ध-मोक्ष दोनों को स्वीकारता है; इसलिए ऐसा नहीं कि व्यवहार साधन है और निश्चय साध्य है – ऐसा नहीं। यहाँ व्यवहार जाननेयोग्य है – ऐसी दो पर्यायें हैं। आहाहा ! ऐसा है। जरा सा बदले तो सब बदल जाये ऐसा है। आहाहा ! समझ में आया ?

अब बनियों को फुरसत नहीं मिलती। उस बेचारे ने लिखा है न ? ऐतिहासिक जापान का बड़ा है, बड़ा ऐतिहासिक, बड़ी उम्र का है और एक लड़का छोटा है। उस लड़के (और उसके पिता को) को दोनों को इतिहास का रस, बहुत पुस्तकें देखी हजारों-लाखों, फिर उसने लिखा है कि जैनधर्म (अर्थात्) 'अनुभूति' है। जैनधर्म वह अनुभूति, आत्मा के आनन्द का अनुभव होना वह जैनधर्म है। पर्याय है न। जैनधर्म, किसके आश्रय से होता है, वह फिर अलग वस्तु। जैनधर्म वह अनुभूति अर्थात् त्रिकाली आनन्द का नाथ भगवान का पर्याय में अनुभव होना, वह जैनधर्म है परन्तु उसने लिखा है.. डॉक्टर ! उदाणी ! बड़े डॉक्टर हैं राजकोट के, मुम्बई में बड़े पहले नम्बर के डॉक्टर ये दाँत के हैं।

उसने ऐसा कहा कि परन्तु यह धर्म – ऐसा धर्म बनियों को मिला। ऐसा उसने लिखा है। और बनिये व्यापार से निवृत्त नहीं होते। ए... चिमनभाई! उसने लिखा है समाचार-पत्र में आया है। ऐसी अनुभूति मार्ग जो जैनदर्शन, परन्तु बनियों को मिला और बनिये व्यापार में रुक गये। आहाहा! इसका निर्णय करने की फुरसत नहीं मिलती, थोड़ा बहुत पढ़कर करे तो भी वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा!

शास्त्र का ज्ञान हुआ, शास्त्र से कि यह ऐसा है और वैसा है। वह शास्त्रज्ञान कोई ज्ञान नहीं, वह तो अज्ञान है।

श्रोता : आपकी उपस्थिति में तो व्यापार नहीं होता और आप हमारी दुकान पर कुछ आओ नहीं, अब हमें करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वकालत करके स्पष्टीकरण कराते हैं। आहाहा! प्रभु का मार्ग है शूरों का ए कायर का नहीं काम वहाँ। अन्यमत में भी कहते हैं न 'हरि का मारग है शूरों का ए कायर का नहीं काम जो न।' हरि अर्थात् आत्मा। राग-द्वेष और अज्ञान को हरे ऐसा प्रभु हरि, उसका मार्ग शूरवीरों का है, वह कायर का-नपुंसक का काम वहाँ नहीं है। जो कोई पुण्य-पाप को रचता है, वह नपुंसक / पावैया / हिंजड़ा है। पर को तो कर सकता नहीं। अरे प्रभु! सुन तो सही एक बार!

श्रोता : पड़ोसी का मठ याद आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई के वहाँ पावैया का था न? गोंडल में पावैया की गली थी, वहाँ रहते थे, हिंजड़ों की गली थी। हमारे, उस समय हमारे वहाँ पालेज में था। पालेज में हिंजड़ों का मठ था और पहले पावैया बहुत थे। हमारे दुकान थी, वहाँ पावैया आते वह लेने-भिक्षा लेने। सब देखा है, पाँच वर्ष दुकान चलायी थी न! सत्रह वर्ष से बाईस (वर्ष तक)। सब देखा है – एक-एक बात! वे हिजड़े आते यदि (उन्हें भिक्षा देने में) देरी लगावे तो कपड़े ऊँचे कर दें। अरर्र! दे दो, दे दो। पावैया माँगने क्या कहलाये वह? हर रोज आवें और भिक्षा माँगे। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि आत्मा का वीर्य उसे कहते हैं कि जो अन्दर शान्ति और आनन्द की रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं; पर की रचना (कर सकता हूँ)—ऐसा माने

वह तो नपुंसक / पावैया / हिजड़ा है। हम यह करते हैं, व्यवस्था व्यापार की और धन्धे की.. परन्तु अन्दर में होनेवाले पुण्य-पाप के भाव को रचे, उसे भगवान कहते हैं कि वह नपुंसक है क्योंकि जैसे नपुंसक को प्रजा नहीं होती, वैसे शुभ-अशुभभाव की रचना करनेवाले को धर्म की प्रजा नहीं होती - ऐसी बात है इस वीतरागमार्ग में, बापू! वीतरागमार्ग कोई अलग चीज है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि वस्तुस्थिति से तो स्वरूप की रचना करे वह वीर्य, परन्तु उसकी पर्याय में राग की रचना हीन दशा से हो वह न माने तो उसे एकान्त कहा जाता है। आहाहा! जानने के लिये, हों! आदरने का यहाँ प्रश्न नहीं है। आहाहा!

यह विवाद है न? बारहवीं गाथा में ऐसा कहा न कि व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। संस्कृत टीका में '**तदात्वे**' है। '**तदात्वे**' शब्द संस्कृत में पड़ा है। '**तदात्वे**' अर्थात् उस-उस काल में। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु पूर्णानन्द का, जिसे अन्तर स्वीकार दृष्टि की हुई और सम्यग्दर्शन हुआ है—ऐसे जीव को निश्चय का विषय तो उसका अखण्ड अभेद आत्मा है परन्तु पर्याय में अभी शुद्धता थोड़ी है, अशुद्धता है, समकिती को, ज्ञानी को—उसे वह जानना, यह प्रयोजनवान है। है ऐसा जानना। '**तदात्वे**' अर्थात् उस-उस समय में उस-उस प्रकार की शुद्धता का अंश और अशुद्धता का अंश प्रतिसमय भिन्न-भिन्न है; इसलिए उस-उस काल में वह जानना प्रयोजनवान है। आहाहा! '**तदात्वे**' शब्द संस्कृत में है न! यह तो एक-एक अक्षर की बात है, यह तो सब। आहाहा!

यह जाना हुआ प्रयोजनवान है परन्तु आदर किया हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा नहीं। ऐसे यहाँ पर्याय में राग है, वैसा जानना चाहिए और वह उसे छेदने का उपाय मोक्ष की पर्याय है, मोक्ष का मार्ग (है) - ऐसा जानना चाहिए। जानना चाहिए। इस जानने का निषेध करे और एकान्त करे कि मुझे भावबन्ध भी नहीं और मोक्ष का उपाय भी नहीं, क्योंकि भावबन्ध नहीं; इसलिए मोक्ष का उपाय नहीं। मिथ्यात्व है - एकान्त से मिथ्यात्व है। आहाहा!

श्रोता : व्यवहार को न माने यह भी मिथ्यात्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार को-पर्याय को न माने तो एकान्त हो गया न? तो अज्ञानी है और व्यवहार को आदरणीय माने तो भी मिथ्यात्वी है, व्यवहारनय का विषय है

और वह जाननेयोग्य है - ऐसा न माने तो भी मिथ्यात्व है। आहाहा! बापू! मार्ग बहुत परिचय करे तो समझ में आये ऐसा है। यह ऐसी चीज है। आहाहा!

यह यहाँ कहा कि परमार्थ से जो संसार-मोक्ष का अभाव कहा है और ऐसा परमार्थ से है, वही एकान्त से सिद्ध होगा। भावबन्ध और भावमोक्ष की पर्याय है, यह बात सिद्ध नहीं होगी। पर्यायनय में भावबन्ध और भावमोक्ष वह व्यवहारनय का विषय है, वह जानना नहीं सिद्ध होगा। आहाहा! अब इसमें बेचारी महिलाओं को पूरे दिन कहाँ फुरसत है, रोटियाँ बनाना, रोटियाँ करना और बच्चों को सम्हालना। ऐसी बातें। आहाहा! ऐसा कि बहिनों को रोटी के अलावा समय मिले और इन धन्धेवालों को समय नहीं मिलता। आहाहा! अरे! बहिनों को तो भाग्यवान मिले हैं न, बहिन भगवतीस्वरूप, धर्मरत्न, जगत में स्त्रियों में पका है, आहाहा! यह स्त्रियों का भाग्य है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **किन्तु, ऐसा एकान्तरूप वस्तु का स्वरूप नहीं है;..** अर्थात् क्या कहा? कि परमार्थ से राग और शरीर से भगवान को भिन्न बतलाया—ऐसा एक ही माने और पर्याय में राग तथा शरीर का सम्बन्ध है—ऐसा न माने, तब तो एकान्तरूप वस्तु का स्वरूप नहीं है। यह वस्तु का स्वरूप एकान्त ऐसा नहीं है।

अवस्तु का श्रद्धान,.. आहाहा! त्रिकाली परमार्थ को माने और व्यवहार का विषय वर्तमान पर्याय में राग और उससे छूटना है, वह न माने तो अवस्तु का श्रद्धान-वह तो अवस्तु हुई। आहाहा! वस्तु तो त्रिकाली ज्ञायक को जाने सम्यक् और वर्तमान भावबन्ध तथा भावमोक्ष को जाने, वह वस्तु का स्वरूप। आहाहा! एकान्त, वह वस्तु का स्वरूप नहीं। **अवस्तु का श्रद्धान..** आहाहा! पर्याय में राग का सम्बन्ध है और अभाव होता है, ऐसी पर्यायों को न माने तो वह अवस्तु हुई। आहाहा!

अवस्तु का श्रद्धान,.. बाबूभाई! बहुत सरस गाथा है। आहाहा! नवरंगभाई! ऐसा है। अवस्तु अर्थात्? त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप में राग-द्वेष नहीं, शरीर नहीं, यह एक पहलू और पर्याय में रागादि व शरीर है, यह दूसरा पहलू—ऐसा होकर वस्तु है, पूर्ण प्रमाण का विषय। निश्चयनय का विषय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव राग और शरीररहित वह वस्तु, परन्तु वह निश्चयनय का विषय हुआ। अब व्यवहारनय का विषय राग है; शरीर का सम्बन्ध-

निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, वह व्यवहारनय का विषय; दो का विषय होकर प्रमाणज्ञान हुआ, वह निश्चय और यह व्यवहार (दोनों मिलकर प्रमाण का विषय हुआ)।

अत: प्रमाण ज्ञान की वस्तु है द्रव्य और पर्याय, इस प्रकार यदि न माने तो वह अवस्तु को मानता है। अब इसमें फुरसत कहाँ बेचारे व्यापारी को.. घण्टे-दो घण्टे मिलते हैं बाकी तो स्त्री, पुत्र सम्हालने में और धन्धा अकेला पाप; धर्म तो नहीं परन्तु वहाँ तो पुण्य भी नहीं।

श्रोता : पाप करके पैसा मिले ऐसा होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा, धूल मिले। पैसा तो पुण्य होता है तो मिलता है। पाप तो लाख कर न ? वह तो पूर्व का पुण्य हो तो पैसा मिलता है; मिलता है अर्थात् क्या ? इसे मिलता है ? इसे दिखता है, इसलिए मुझे मिला ऐसी ममता इसे मिलती है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! मार्ग अलग है बापू!

यह जैनदर्शन कोई अलौकिक वस्तु है। यहाँ कहा कि अवस्तु का श्रद्धान अर्थात् वस्तु त्रिकाली शुद्ध है और पर्याय में अशुद्धता और मोक्ष का मार्ग है; इस प्रकार वस्तु है। अब इस प्रकार से वस्तु का न मानकर **अवस्तु का श्रद्धान,..** आहाहा! अवस्तु का **ज्ञान,..** अवस्तु का **आचरण अवस्तुरूप ही है।** मिथ्यात्वरूप अज्ञानरूप है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। इसकी एक-एक गाथा गजब है! केवलज्ञानी के पथानुगामी सन्तों ने जगत के लिये प्रसिद्ध किया है। दिगम्बर सन्त, उनके बिना अन्यत्र कहीं यह बात नहीं है। अन्यमत में तो नहीं परन्तु श्वेताम्बर और स्थानकवासी में यह बात नहीं। ए.. ! अब तो ४४ वर्ष हुए। अब उसका बाह्य.. है ? यहाँ ४४ हुए, ४५ वर्ष में आये थे, शरीर को, हों! और ४४ वर्ष हुए, ८९ वर्ष हुए, एक ओर ४५ एक ओर ४४। अब प्रसिद्ध तो करना चाहिए न कि भाई! यह है। स्थानकवासी और श्वेताम्बर को तो मोक्षमार्गप्रकाशक में जैन ही नहीं है - ऐसा कहा है। अजैन हैं, अन्यमती हैं क्योंकि जैन की पद्धति की रीति ही उनमें नहीं है। ए.. विमलचन्दजी! निश्चय-व्यवहार की बात ही वहाँ कहाँ है ? वह तो दया पालो और व्रत करो, भक्ति करो और पूजा करो, सामायिक करो, प्रौषध करो और प्रतिक्रमण करो.. तुझे किसकी सामायिक ? मिथ्यादृष्टि को सामायिक कैसी और प्रौषध कैसे ? ऐई! बहुत से तो स्थानकवासी आये हैं न, स्थानकवासी में था न, इसलिए स्थानकवासी आये हैं।

श्रोता : स्थानकवासी में लायक जीव अधिक थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची है, बात तो सच्ची है भाई की। आहाहा! ऐसा मार्ग बापू! पण्डित जयचन्दजी ने स्वयं ऐसा टीका का स्पष्टीकरण किया है। है!

अवस्तु अर्थात् क्या? त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप जो है, उसमें राग-द्वेष नहीं, उसमें बन्ध / भावबन्ध आदि नहीं, मोक्ष भी नहीं, वह वस्तु है, नय का एक विषय। दूसरे नय का विषय पर्याय में राग है, बन्ध है, शरीर को और जीव को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, वह व्यवहारनय का विषय, दोनों होकर पूरी वस्तु का विषय हुआ; इस प्रकार जो वस्तु को न माने, वह अवस्तु को मानता है। आहाहा! है? वस्तु नहीं उस प्रकार उसने मानी है। आहाहा! शान्तिभाई! यह ऐसी बात है। यह दूध, दही में रखा जाये ऐसा नहीं इसमें। इसमें भी थोड़ा भाग लो और उसमें भी थोड़ा भाग लो.. आहाहा! स्पष्टीकरण कैसा किया है देखो न! पण्डित जयचन्दजी हैं, गृहस्थ हैं, सादी भाषा में प्रचलित भाषा में (स्पष्टीकरण किया है)। इसके बिना समझ में नहीं आ सकता। बात तो सच्ची है। आहाहा!

द्रव्यरूप से त्रिकाली एकरूप शुद्ध है और पर्यायरूप से पर्याय है। राग और राग के अभावरूप पर्याय है। दोनों होकर प्रमाण का विषय पूरी वस्तु है। निश्चयनय का द्रव्य, वह ध्रुव है, निश्चयनय का द्रव्य, वह ध्रुव है और प्रमाण का द्रव्य, ध्रुव तथा पर्याय दो होकर द्रव्य कहा जाता है, वह प्रमाण का द्रव्य है। पण्डितजी!

श्रोता : द्रव्य दो प्रकार के।

पूज्य गुरुदेवश्री : जो ध्रुव है भगवान नित्यानन्द प्रभु, वह निश्चयनय का द्रव्य कहलाता है; है तो एक अंश परन्तु नय है, वह अंश को ही बताता है। नय, प्रमाण की पूरी चीज को नहीं बतलाता। आहाहा! अरे! यह क्या होगा? निश्चयनय है, नय है वह अंश को बताता है तो जो त्रिकाली द्रव्य है—ज्ञायक ध्रुव, है तो एक अंश, प्रमाण में का एक अंश है। पर्याय के अतिरिक्त का एक अंश है परन्तु उसे निश्चयनय का द्रव्य कहा है और व्यवहारनय का विषय पर्याय है, बन्धादि है, वह उसका विषय है। दोनों का विषय होकर प्रमाण का विषय है परन्तु प्रमाण उस निश्चय को रखकर.. यह रखा है मस्तिष्क में, नहीं तो प्रमाण नहीं होगा। क्या कहा यह? प्रमाण, प्रमाणज्ञान ने दोनों को लक्ष्य में लिया परन्तु

प्रमाण ने वह निश्चय है, अभेद है, उसे तो लक्ष्य में रखा है और तदुपरान्त पर्याय को मिलाया है; इसलिए उसे प्रमाणज्ञान कहने में आता है। प्रमाणज्ञान करने से जो अभेद है, उसका निषेध उसमें हो गया - ऐसा नहीं है। अरे.. अरे! ऐसी बातें अब! है?

श्रोता : बहुत सरस!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नय और यह प्रमाण और क्या है यह कुछ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वस्तु जो आत्मा है, वह द्रव्यस्वरूप ध्रुव भी है और पर्यायस्वरूप अध्रुव भी है। अब जो त्रिकाली ध्रुव है, उसका निर्णय अध्रुव करता है। सम्यग्दर्शन आदि अनित्य हैं, वे नित्य का निर्णय करते हैं, परन्तु नित्य का निर्णय करने पर भी वह पर्याय, पर्यायरूप है—ऐसा यदि न जाने तो वस्तु का स्वरूप त्रिकाली और वर्तमान दोनों को उसने नहीं जाना। आहाहा! यह तो सूक्ष्म अभ्यास करे तो समझ में आये ऐसा है। ऊपर-ऊपर से नहीं कि दो-चार दिन आवे और जाये, चले-भागे। आहाहा!

श्रोता : कभी कहते हो अन्तर्मुहूर्त में होता है। कभी कहते हो पुरुषार्थ एक समय में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उग्र पुरुषार्थ एक समय में ही होता है परन्तु यहाँ तो अभी तो शिथिलता और विपरीतता के बहुत शल्य गिर गये हैं न? आहाहा! वे बहुत निकालने के लिये इसे बहुत अभ्यास चाहिए। ऐसा थोड़ा बहुत समझ लिया और मानो आ जाये, ऐसा नहीं है। वेदान्त है, वह अकेले निश्चय को मानता है; बौद्ध है, वह अकेली पर्याय को मानता है। जैनदर्शन है, वह दोनों को मानता है—द्रव्य और पर्याय दोनों होकर वस्तु है। उसमें जैनदर्शन में भी निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय तो ध्रुव और अभेद अखण्डानन्द प्रभु है। उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है, बाकी पर्याय के लक्ष्य से नहीं होता, निमित्त के लक्ष्य से नहीं होता, राग के लक्ष्य से नहीं होता, पर्याय के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! यह तो अभी धर्म की पहली सीढ़ी। इससे वह निश्चयनय का विषय ध्रुव, उसे द्रव्य अर्थात् नय का द्रव्य। अब यदि पूरी चीज लें द्रव्य, प्रमाण का विषय तो पर्याय साथ में मिलती है, तब वह प्रमाण का द्रव्य होता है। इससे जो वस्तु इस प्रकार जो वस्तु है, उस प्रकार न माने तो अवस्तु को मानता है। कहा न? **अवस्तु का श्रद्धान,..** अवस्तु का

अर्थात् यह द्रव्य और पर्याय दो रूप वस्तु है, उस प्रकार से न माने तो अवस्तु हुई। आहाहा! कहो, समझ में आता है या नहीं?

अवस्तु का श्रद्धान, (ज्ञान) आचरण अवस्तुरूप ही है। वह तो मिथ्यात्वरूप ही है। भावार्थ भी कितना अच्छा किया है। पण्डितजी ने भी, पहले के पण्डित! आहा! **इसलिए व्यवहारनय का उपदेश..** व्यवहार का उपदेश। **न्यायप्राप्त है।..** उपदेश न्यायप्राप्त है। पर्याय है, बन्ध है, मोक्ष का मार्ग है—ऐसा व्यवहारनय का उपदेश न्यायप्राप्त है। आदरणीय है, यह यहाँ प्रश्न नहीं। आहाहा! व्यवहारनय का जो विषय है, भेद और पर्याय (है), उसे बतलाने से वह न्यायप्राप्त है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! सोगानी तो ऐसा कहे, उनके 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' में (कहे) हम तो द्रव्य-ध्रुव हैं, पर्याय हमारा ध्यान करे तो करो, हमें क्या है। है? द्रव्यदृष्टिप्रकाश, सोगानी! पर्याय हमारा ध्यान करे तो करे—ऐसा कहकर पर्याय की अस्ति तो रखी; हम किसका ध्यान करें, हम तो ध्रुव हैं न? आहाहा! हमारा ध्यान पर्याय करे तो करो। इससे ध्यान पर्याय करे तो पर्याय में हम आ जाते हैं - ऐसा नहीं है। है न भाई! द्रव्यदृष्टिप्रकाश यहाँ नहीं? नहीं, पुस्तक होती तो निकालकर बताते। आहाहा!

इसलिए व्यवहारनय का उपदेश न्यायप्राप्त है। इस प्रकार.. इस प्रकार अर्थात् जो प्रकार कहा, उस प्रकार **स्याद्वाद से..** परमार्थ से वह राग-द्वेष और शरीररहित है, पर्यायनय से / व्यवहारनय से वह राग-द्वेष और शरीरसहित है - ऐसा स्याद्वाद है। अपेक्षा से उसका कथन है। एकान्त कथन भगवान का नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **स्याद्वाद से दोनों नयों का विरोध मिटाकर श्रद्धान करना..** दोनों नयों का विरोध मिटाकर (अर्थात्) निश्चय कहे कि राग-द्वेष और बन्ध आदि हैं ही नहीं; पर्याय कहे कि मुझमें राग-द्वेष और मोक्ष का उपाय है—ऐसा दोनों का विरोध है, उसे मिटा देना है। निश्चय से यह ठीक है, पर्याय से यह ठीक है। आहाहा! उसमें आया है न, कलश-टीका में, नहीं? '**उभयनय विरोध ध्वंसिनी जिनवचनसी रमन्ते**' यह आया है कलश में। वहाँ ऐसा अर्थ किया अभी के उन लोगों ने—'**जिनवचनसी रमन्ते**' अर्थात्? जिनवचन में दो नय कहे न? इसलिए दो नय में रमना—ऐसा अर्थ अभी वे करते हैं। समयसार का चौथा श्लोक है।

यहाँ तो जिनवचन में रमन्ते का अर्थ यह कि जिनवचन में यह कहा है कि भगवान पूर्णानन्द का नाथ वह पूज्य शुद्ध चैतन्यघन है, वह उपादेय है—ऐसा जिनवचन में कहा है, उसमें रमना; रमना वह पर्याय हुई परन्तु रमना त्रिकाल में, वह द्रव्य हुआ। है न, आ गया है न ? कलश में है। यह कलश-टीका है न ? उसमें है, '**जिनवचनसी रमन्ते**' अर्थात् कहीं वाणी में रमना है ? परन्तु जिनवचन ने कहा जो उपादेय त्रिकाली आनन्द का नाथ भगवान शुद्ध चैतन्यघन, अभेद, अखण्ड, उसे दृष्टि में लेकर वहाँ रमना, उसे उपादेय जानना। जानना, वह पर्याय हुई और जानने में आया, वह द्रव्य है। आ गये दोनों। व्यवहार में रमना—ऐसा नहीं आता वहाँ, पर्याय में रमना, यह नहीं आता। तथापि उसमें रमे, वहाँ पर्याय आ गयी। आहाहा ! ऐसा है। ऐसा मार्ग सम्प्रदाय में तो कहीं सुनने को मिले ऐसा नहीं है। आहाहा ! इसलिए सोनगढ़ का है ऐसा कहते हैं न ? सोनगढ़ का एकान्त है-एकान्त है.. व्यवहार से होता है - ऐसा नहीं मानते। परन्तु व्यवहार है किन्तु व्यवहार से होता है यह बात नहीं है। व्यवहारनय है, उसका विषय है। समझ में आया ?

यह कल कहा था न, नहीं कहा था ? ८३ के साल, कितने वर्ष हो गये ? बहुत, हमारे दामोदर सेठ थे न, हठाग्रही बहुत थे। ८३ की बात है, हों ! ५१ वर्ष हुए। वे कहते कि भगवान की मूर्ति को मानना, वह मिथ्यादृष्टि हो तब तक माने, सम्यग्दृष्टि नहीं। ऐसा कहे दूसरों को, हों ! मेरे पास नहीं, मुझसे डरते, क्योंकि मैं कुछ कहने जाऊँगा तो छोड़ देंगे। मैं कहीं बाड़ा में आ गया, इसलिए तुम्हारा मानूँ - ऐसा नहीं। कहा—यहाँ तो सत्य होगा वह मानेंगे। तब वह बारम्बार ऐसा कहने लगा। तब मैंने उसे नहीं परन्तु दूसरे को कहा, उसने वहाँ पहुँचाया होगा। सुनो कहा—आत्मा को सम्यग्दर्शन होता है, शुद्ध चैतन्य अखण्डानन्द प्रभु की प्रतीति और अनुभव होता है, तब उसे भावश्रुतज्ञान होता है। यह ८३ की बात है। सम्यग्दर्शन होने पर भावश्रुतज्ञान होता है और भावश्रुतज्ञान होने पर वह भावश्रुतज्ञान प्रमाण है और नय हैं, वे प्रमाण का अंश हैं; इसलिए जिसे भावश्रुत हुआ, उसे निश्चय और व्यवहार दो नय होते हैं। उस व्यवहारनय का विषय भगवान की मूर्ति वहाँ है; इसलिए वास्तव में तो श्रुतज्ञानी को ही ऐसा व्यवहार होता है, समकिती को ही भगवान की पूजा होती है और ऐसा व्यवहार होता है। मिथ्यादृष्टि को नहीं होता।

यहाँ तो भाई! वस्तु सत्य हो वह मानेंगे। हम बाड़ा में (सम्प्रदाय में) आ गये, इसलिए तुम्हारा मानेंगे - ऐसा यहाँ नहीं है। श्रुतज्ञान होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर उसका- श्रुत का भेद व्यवहार और निश्चय, उसे व्यवहारनय होता है और सामने ज्ञेय का भेद— नाम, स्थापना, द्रव्य—यह ज्ञेय का भेद है। नय है, वह ज्ञान का भेद है। उसे होता है। है व्यवहार, है शुभभाव परन्तु सम्यग्दृष्टि को ही ऐसी पूजा का भाव शुभ होता है। आहाहा! वही वास्तविक मूर्ति को मानता है, शुभभाव को मानता है, व्यवहार को मानता है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं **स्याद्वाद से दोनों नयों का विरोध मिटाकर..** निश्चय से तो है वैसा है और पर्याय से जैसा है वैसा है—ऐसा जानना चाहिए। **श्रद्धान करना, सो सम्यक्त्व है।** इसका नाम समकित कहा जाता है।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)